श्रीमंत शंकरदेव द्वारा पोषित मूल्यों में व्याप्त लोकतंत्र

वैभव सिंह

नया होना ही नए होने की एकमात्र शर्त नहीं है, नया वह भी है जो कभी पुराना नहीं होता। मुझे याद आता है, हमारी माध्यमिक शिक्षा की हिन्दी 'मञ्जरी' में एक पाठ आता था 'कौन बनेगा निंगथउ (राजा)?' कहानी मणिपुर की एक लोक कथा पर आधारित है। कंगलाइपक का राजा अपने उत्तराधिकारी की तलाश में अपनी ही संतानों में एक प्रतियोगिता रखता है जिसमें राजा के तीनो पुत्र सानाजाउबा, सानायायमा और सानातोम्बा अपने अपूर्व बल का प्रदर्शन करते हैं। सानातोम्बा तो अपने पराक्रम से बरगद के पुराने वृक्ष को ही उखाड़ फेकता है। इन सब घटनाओं के बीच, राजकुमारी सानातोम्बी बरगद के वृक्ष के पास खड़ी होकर विलाप कर रही थी। उसे इस कृत्य में वीरता कम, क्रूरता अधिक दिख रही थी। वह पक्षियों के घोंसले उजड़ जाने से दुःखी थी। वह वटवृक्ष के मर जाने से अत्यन्त व्याकुल थी। अन्त में राजा, उसकी प्राणिमात्र के लिए संवेदना देख कर उसी को तुंगी (उत्तराधिकारी) चुनते हैं। पराक्रम पर मानवीय संवेदना और प्रकृति प्रेम की जीत होती है। उत्तर-पूर्व भारत की, प्रकृति और प्राणिमात्र के प्रति यह संवेदना जगद्विख्यात है, जो समय समय पर किस्सों कहानियों के माध्यम से हमें सुनाई पड़ती रहती है। यह कहानी इतिहास के प्राचीर पर कहीं मध्य में अंकित है लेकिन इसका सन्देश नित-नवीन है। इसका अनुभव मुझे तब होता है जब मैं दिल्ली में अपने उत्तर-पूर्व भारत के किसी मित्र से मिलने जाता हूँ। उसके घर की बॉलकनी, हमारे घरों की बॉलकनी से अलग, आधारभूत अन्तर लिए होती है। वहाँ पक्षियों के लिए भी जगह है, तितलियों के लिए भी, लताओं के लिए भी और गमले में जीविका कर सकने वाले छोटे पौधों के लिए भी। यह है हमारा भारत। यही है हमारा भारत, जिसकी नींव डालने में कुछ गणमान्यों ने अपनी जान खपा दी, अपना सब 'अमूल्य' दे दिया, मूल्य निर्धारण के लिए। यहाँ के लोकतंत्र का लोक मनुष्यों से आगे बढ़कर पशु-पक्षी, लता-वृक्ष, पहाड़-नदियों तक विस्तृत है। सबने अपनी-अपनी रीतियों, क्रिया विधियों से अपना कार्य किया। श्रीमंत शंकरदेव ने अपनी रीति से, बदलापद्म-आता ने अपनी रीति से, लाचित बरफुकन ने अपनी रीति से, रानी गाईदिन्ल्यू ने अपनी रीति से और भूपेन हजारिका ने अपनी रीति से। अहोम सेना में सेनापति रहे लाचित बरफुकन और

ब्रिटिश साम्राज्यवाद से नागाओं की रक्षा के लिए क्रान्ति का बिगुल फूंकने वाली रानी गाईदिन्ल्यू का स्पष्ट मानना था की कभी-कभी अहिंसा की चिर स्थापना के लिए शस्त्र उठाना भी अनिवार्य हो जाता है। यही जागरण, भारत रत्न भूपेन हजारिका ने अपनी संगीत के माध्यम से किया। रीतियां सबकी अलग रही, लेकिन लड़ाई एक ही मूल्य की स्थापना को लेकर रही है, और वह मूल्य हैं अहिंसा की स्थापना का, प्रकृति-प्रेम का, जीवन में जीवटता और हरियाली का। हमनें सबका अच्छा और शिव ग्रहण किया, बिना किसी भेदभाव के। ऋग्वेद का ऋषि घोषणा करता है "आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरितासउद्भिदः।"[1] अर्थात 'कल्याणकारक, न दबने वाले, पराभूत न होने वाले, उच्चता को पहुँचाने वाले शुभकर्म चारों ओर से हमारे पास आयें।'

15वीं शती में जन्मे श्रीमंत शंकरदेव को जब अपने अस्तित्व में कसमसाहट महसूस हुई तो वह संपूर्ण भारत की यात्रा पर निकले और दो बार उन्होंने संपूर्ण भारत की यात्रा की। वह केदारनाथ से रामेश्वरम और जगन्नाथपुरी से द्वारिका तक गए। इस यात्रा से वो जो लेकर लौटे वह है 'विविधता में एकता' 'महान सांस्कृतिक परंपराओं में झंकृत मौलिक एकात्मवाद'। कालान्तर में इसी पूँजी से उन्होंने समस्त उत्तर-पूर्व भारत को, प्रकारान्तर में समस्त भारत को अध्यात्म, मानवता और सांस्कृतिक समृद्धि के उत्स पर लाकर खड़ा कर दिया। उनकी इस आध्यात्मिक झंझावतो के समक्ष भारत के सारे भौतिक उच्चावच ध्वस्त हो गए। यह उनके तमाम साहित्यों, सत्रों एवं नामघरों में अभी भी पुंजीभूत है। श्रीमंत को भारत वर्ष से गहरा लगाव है। एक स्थान पर वह लिखते हैं "कोटि-कोटि जन्म अंतरे जाहार, आसे महा पुन्यराशि, सिशि कदाचित मनुष्य होवय, भारतवरिषे आसि।"[2] यह वास्तव में ऋषियों के उसी उद्घोष का छायानुवाद है जो सदियों पहले गाया गया था। "गायन्ति देवाः किल गीतिकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे। स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूत भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात।।"[3] यह वही प्राचीन सत्य है जो नित-नवीन है। जिसे ऋषियों और मनीषियों ने समय-समय पर अपनी वाणी में कहा। प्राणिमात्र के प्रति भारतीय मूल की वही दया और करुणा और मानवता श्रीमंत को जीवन भर उद्वेलित करती रही और उस शुभ उद्वेलन का परिणाम है 'एकशरणम नामधर्म'। श्रीमंत ने आदिवासी जनजातियों यथा गारो, आदी, भोटा, मिरी, यवना, असमा, कछारी आदि को समाज की मुख्य धारा में लाने के लिए काम किया। समाज के हर व्यापार में उनकी भागीदारी को सुनिश्चित किया। इनके अन्तर तथा बाह्य को जागृत कर नव-वैष्णववाद द्वारा समतामूलक समाज के मार्ग को प्रशस्त किया। जिस समय श्रीमंत शंकरदेव का जन्म हुआ था वह समय

उत्तर और पूर्व भारत में शाक्तों का था। शाक्त, अनियंत्रित होकर बाह्माचार और वामाचार का अभ्यास किया करते थे। उनको, उस समय के अहोम, कोंच और कछारी राजाओं का संरक्षण प्राप्त था और वो अपनी इच्छा अनुसार, शक्ति की आराधना के आड़ में एक बड़ी संख्या में नरबलि और पशुबलि दिया करते थे। श्रीमंत शंकर ने अहोम राजाओं को प्रभावित कर, उत्तर-पूर्व भारत को शाक्तों के इस अन्धविश्वास से मुक्त कराया और वैष्णवों की अहिंसा और दया का प्रचार किया। छोटे-छोटे समुदायों और कबीलों में बँटे लोगों को 'एकशरणम नामधर्म' के द्वारा जोड़ा और उनको नाम स्मरण की महिमा बताई। आत्मा और परमात्मा के बीच में बिचौलिए की भूमिका को निस्तेज किया। बाह्याचारों से मुक्ति दिलाकर भारतीय दर्शन और अध्यात्म का लोकभाषा (ब्रजबुलि) में प्रचार किया। नाम धर्म को मानवधर्म का पर्याय बनाने के लिए प्राण खपा दिए। श्रीमंत की भक्ति, भक्त कवियों की भक्ति की तरह भावनात्मक प्रेमोत्पाद और गलदश्रु नहीं थी। वह बाह्याचारों में आकंठ डूबे तत्कालीन समाज के सामाजिक उन्नयन और संगठन की सूत्रधार थी। डॉ नगेन्द्र अपनी पुस्तक 'मिथक और साहित्य' (1979) में शंकरदेव के बारें में लिखते हैं "शंकरदेव ने भागवत पुराण को अपना उपजीव्य ग्रन्थ बनाकर भक्ति विषयक विचार प्रस्तुत किये हैं। आत्म-समर्पण की भावना की स्वीकृति होने से यह भक्ति संप्रदाय, अन्य वैष्णवों से कुछ भिन्न लक्षित होता है, किन्तु मूल विचार में भेद नहीं हैं। इनकी भक्ति में दास्य भावना का प्राधान्य है। दास्य भावना की भक्ति के कारण इन भक्तों को 'शरणिया' शब्दों से भी अभिहित किया जाता है।"[4] यह शरणिया भक्ति, वैष्णवों के मानवता वाद और अहिंसावाद से ही अपने प्राण खींचती है। डॉ बिमल फूकन अपनी पुस्तक 'Shankar Dev: Vaishnav Saint Of Assam' (2011) में लिखते हैं "Social Reforms was Shankardeva's main agenda. His religion, a means of his people to climb out of the abyss they found themselves in. He knew the faith needed, to be liberal, practical, universal and accessible. Above all, it had to appeal the audience it was aimed at. Mere issuing of doctrinal message was not enough. One had to create the ways and means to carry it to people. For it, to be successful, it need to be administered with kindness, aberrations dealt with firmly." [5] अर्थात 'सामाजिक सुधार, शंकरदेव की मुख्य कार्यावली थी। उनका धर्म, उनके लोगों को, उनके अन्तर्मन और समाज में व्याप्त गहरे गड्ढे से बाहर निकलने का एक साधन था। उन्हें विश्वास था कि श्रद्धा को उदार, व्यावहारिक, सार्वभौमिक और सुलभ होना चाहिए। केवल सैद्धांतिक संदेश जारी करना पर्याप्त नहीं था। इसको लोगों तक ले जाने के लिए तरीके और साधन की आवश्यकता थी। सफल होने के लिए इसे दयालुता के साथ प्रशासित करने की आवश्यकता थी। श्रीमंत की इन्ही आधारभूत भूमिकाओं और संस्थाओं को महात्मा गाँधी

अपनी राजनैतिक परिधि में लेकर आए। उन पर टिप्पणी करते हुए श्री गाँधी अपनी एक पत्रिका में लिखते हैं "असम भाग्यशाली है कि शंकरदेव ने पाँच सौ साल पहले इसके लोगों को ऐसा आदर्श प्रदान किया जो मेरे रामराज्य का आदर्श है।"[6]

रामकथा भारतीय जनमानस में गहरे तक व्याप्त है। गाँव की चौपालों से लेकर संस्कृत के शास्त्रीय ग्रंथों तथा पुराणों तक राम रमे हैं। राम को सब ने अपने-अपने सुविधा के अनुसार अपनाया है। राम सबके हैं। बौद्ध और जैन विद्वान भी राम के व्यक्तित्व की आदर्शवादिता को देखते हुए उन्हें अपनी परिधि में लेने की कोशिश करते हैं। अब तक लगभग 300 तरह की रामायण अपने विक्षेप के साथ प्रकाश में हैं। रामकथा का मूल स्त्रोत तो आदिकवि वाल्मीकि कृत रामायण है। उसके बाद रामकाव्य की परंपरा में जयदेव, कालिदास, कम्बन, अनुतच्चन, नागचन्द्र, संत एकनाथ, कृत्तिवास, चकबस्त, माधवकन्दली, बाबा तुलसीदास आदि अन्य कवियों तथा संतों ने इसे आगे बढ़ाया। राम धीरज, मर्यादा तथा प्रजारंजन के शिखर पुरुष हैं। किसी भी सभ्य समाज को ऐसे ही व्यक्तित्व पसंद आते हैं जो हर प्रकार से लोक रंजक तथा प्रजारंजक हों। राम में ये सारे गुण विद्यमान हैं और वह आवश्यकता पड़ने पर योद्धा भी हैं। यही कारण हैं कि राम, श्रीमंत शंकरदेव के रचनात्मक परिधि में भी आए। श्रीमंत ने अपनी रचनाओं 'उत्तरकाण्ड' और 'राम विजय' में राम के विभिन्न रूपों का वर्णन सरसता और सरलता में करके उत्तर-पूर्व भारत के जनमानस पर एक अमिट हस्ताक्षर छोड़ दिया। अगर हम मध्यकालीन सन्त कवियों को ध्यान से पढ़ें तो लगभग सभी, कहीं-न-कहीं किसी-न-किसी बिन्दु पर संकीर्ण दिखते हैं। महा- प्रगतिशील होने का दावा भरने वाले कबीर में भी महिलाओं के लिए चरम-संकुचन विद्यमान हैं। कबीर के मानवतावाद में आधी आबादी की चिन्ता धुंधली है। अन्य सन्त कवियों में भी अपने आराध्य के प्रति चरम निष्ठा तथा अन्य के आराध्यों और सम्प्रदायों के प्रति विद्वेष, निन्दा और उपेक्षा का भाव हैं। निष्कर्षतः कह सकते हैं की मध्यकाल के कमोबेश सभी सन्त कवियों में लोकतंत्र का अभाव है। श्रीमंत इस मामलें में अपना एक विलक्षण स्थान रखते हैं। वो ब्रज यात्रा पर कृष्णकवियों से मिलते हैं, ब्रजभाषा सीखते हैं, कृष्णभक्त बनते हैं, असमिया भाषा से ब्रजभाषा का मेल करके एक नयी और लोकसंपृक्त भाषा 'ब्रजबुलि' का निर्माण करते हैं लेकिन वो राम के आदर्श को देखते हुए, उनमें व्याप्त लोकरंजन और लोकतंत्र को देखते हुए, उन पर लेखनी चलाने से परहेज नहीं करते। वह 'राम' पर लिखते हैं और सारगर्भित लिखते हैं। राम में व्याप्त हर उस मूल्य को

उजागर करते हैं जिससे समाज को समरस बनाने में सहायता मिले। श्रीमंत के रचना संसार को देखते हुए कह सकते हैं कि जो कार्य हिन्दी क्षेत्र में कबीर, दादूदयाल, बाबा तुलसी, आचार्य बल्लभ, सूरदास, परमानन्ददास, सुन्दरदास, रामानन्द ने मिलकर किया, वह श्री शंकरदेव ने पूर्वोत्तर भारत में अकेले ही किया। यहाँ पर सुन्दरदास और सूरदास का नाम इसलिए भी लिया गया हैं, क्योंकि श्रीमंत की कविताओं में आवश्यक काव्यशास्त्रीय खुराक भी है और अपेक्षित राग- रागिनियाँ भी हैं। शंकरदेव ने अपने सत्रों और नामघरों में अंकिया और बरगीतों के मंचन के लिए कुछ-कुछ वाद्ययंत्रों का निर्माण भी किया है। श्रीमंत शंकरदेव इसलिए महत्वपूर्ण हो जाते हैं क्योंकि उनमें लोकतंत्र 500 वर्ष पहले ही अपने नवीन रूप में विद्यमान था।

सन्दर्भ :-

1- ऋग्वेद, प्रथम मण्डल, 89वाँ सूक्त (शान्ति सूक्त)

2- श्रीमंत शंकरदेव बरगर्गीत

3- विष्णु पुराण, द्वितीय अध्याय, 34वाँ श्लोक

4- डॉ नगेंद्र : मिथक और साहित्य (1987) नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ संख्या 84

5- Phukan, Bimal; Srimanta Shankardeva : Vaishnav Saint Of Assam (2017) Partridge Publishing India, Page No. 97

6- गाँधी, मोहनदास करमचन्द : यंग इंडिया पत्रिका (1921)

ई. मेल -kumarvvs2020@gmail.com